

संत कबीर काव्य में निहित सामाजिक चेतना के आयाम

डॉ. अमृत लाल जीनगर

सहायक आचार्य (हिन्दी विभाग)

माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा,

सिरोही, राजस्थान (भारत)

ईमेल - amritjinger@gmail.com

सारांश:

भक्तिकाल की शुरुआत दक्षिण भारत में 7वीं सदी के प्रारंभ में हुई थी। भक्ति की यह परम्परा उस समय से ही चली आ रही है। जानाश्रयी शाखा अर्थात् संत काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि कबीर हैं। संत कबीर एक क्रांतिकारी और विद्रोही कवि थे, उनका पूरा जीवन अंधविश्वास एवं रूढ़िवाद के विरुद्ध सतत संघर्ष का जीवन रहा था। सत्य के प्रति उनकी अनन्य आस्था थी और जो कुछ भी उन्हें सच के प्रतिकूल प्रतीत होता था, वे उसका खंडन करने के लिए सदा तत्पर रहते थे। संत कबीर हिन्दू या मुसलमान होने के पूर्व ईश्वर के भक्त और सत्य साधक थे, उन्हें ईश्वर की ऐसी दिव्य दृष्टि प्राप्त थी, जिसके बल पर बाह्य आवरणों का अंतर्सत्य ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। ईश्वर की आराधना करते हुए भी उन्होंने न संसार को छोड़ा और न सांसारिक दायित्वों से मुँह मोड़ा। हिन्दी में निर्गुणोपासक भक्ति काव्य के प्रवर्तन का श्रेय संत कबीर को दिया जाता है, उन्होंने अपने आराध्य को गोविन्द, राम, रहीम, अल्लाह आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया, परन्तु उनका आराध्य सभी नामों, संख्याओं और सम्बोधन से परे है। उनके साहित्य में ईश्वर को कहीं पति, कहीं पत्नी, कहीं पुत्र, कहीं सखा और कहीं स्वामी के रूप में स्मरण किया गया है। त्याग, सर्वस्व समर्पण और निःस्वार्थ प्रेम का मार्ग उन्हें प्रभु भक्ति का मार्ग प्रतीत होता है। संत कबीर के काव्य में सामाजिक चेतना उनकी भक्ति भावना का एक प्रबल पक्ष है।

कुंजी शब्द : भक्तिकाल, कबीर, समाज, संत, काव्य, चेतना।

प्रस्तावना

सामाजिक से तात्पर्य किसी देशकाल विशेष से संबंधित मानव समाज में अभिव्यक्त परिवर्तनशील जागृति से है। इसका उद्भव सामाजिक अन्याय, अनीति, दुराचार, शोषण की प्रक्रिया से होता है। इसके पीछे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ प्रेरक होती हैं। सामाजिक चेतना व्यक्तिमूलक और समाजमूलक दोनों ही रूपों में होती है। साहित्य को सामाजिक परिवर्तन मानते हुए साहित्यकार व्यक्तिमूलक तथा समाजमूलक दोनों ही स्तरों पर सामाजिक चेतना का अनुसरण करता है।

संत कबीर की सामाजिक चेतना के संदर्भ में पहली धारणा यह बनती है कि वे समाज सुधारक थे। वस्तुतः कबीर बाह्याडम्बर, मिथ्याचार एवं कर्मकांड के विरोधी थे, परन्तु सामाजिक मान्यताओं का विरोध करते समय वे सर्व-निषेधात्मक मुद्रा कभी नहीं अपनाते थे। कबीर अपने समय में प्रचलित हठयोग की साधना, वैष्णव मत, इस्लाम तथा अनेक प्रकार की साधना पद्धतियों से परिचित थे। उन्होंने सबकी आलोचना की, परन्तु उनका सार तत्त्व अवश्य समाहित किया। एक भक्त के रूप में उन्होंने शुष्क ज्ञान साधना से आगे बढ़कर संसार के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित किया। उन्हें मानव समाज की विषमताओं से पीड़ित होने और समाज को उबारने की छटपटाहट भी प्रदान की। संत कबीर के साहित्य में निहित सामाजिक चेतना उनकी भक्ति भावना का ही एक प्रबल पक्ष है।

कबीर की सामाजिक चेतना का श्रेय उन युगीन परिस्थितियों को जाता है, जिनके बीच वे पैदा हुए तथा जीवन व्यतित किया। वे परिस्थितियाँ जीवन के सभी क्षेत्रों में भयावह अव्यवस्था, विषमता और अंधविश्वास की परिस्थितियाँ थी। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार “कबीर ने ऐसी बहुत सी बातें कही हैं, जिन्हें अगर उपयोग किया जाये तो समाज-सुधार में सहायता मिल सकती है, पर इसलिए उनको समाज-सुधारक समझना गलती है। वस्तुतः वे व्यक्तिगत साधना के प्रचारक थे। कबीर एक आध्यात्मिक पुरुष थे। उनका सारा जीवन ईश्वर की उपासना में बीता था। भक्ति समझ लाती है, सहानुभूति लाती है और तब आप दूसरे धर्म, दूसरी विचारधारा का हिस्सा बनते हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं उनके जैसा नहीं बन जाते वरन् उस धर्म या विचारधारा के प्रति एक समझ पैदा करते हैं। प्रेम, समर्पण, त्याग पर ही यह भक्ति सिद्ध हो सकती है।”

शोध आलेख

संत कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ जब समाज में चारों ओर बुराईयाँ व्याप्त थी। छुआछूत, अंधविश्वास, रुढ़िवादिता, मिथ्याचर, पाखण्ड का बोलबाला था और हिन्दू-मुसलमान आपस में झगड़ते रहते थे। धार्मिक पाखण्ड अपनी चरम सीमा पर था। धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता के कारण समाज का संतुलन बिगड़ रहा था, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं का बोलबाला था, समाज में सामाजिक विषमता निरन्तर बढ़ती जा रही थी।

मध्यकाल में संत कबीर जैसे महात्मा, समाज सुधारक की अति-आवश्यकता थी, जो समाज में व्याप्त बुराईयों पर निर्भीकता से प्रहार कर सकें, धर्मों के अनुयायियों को बिना किसी भेदभाव के फटकार सकें और सदाचार का उपदेश देकर सामाजिक समरसता की स्थापना कर सकें। कबीर इन सभी की पूर्ति करने वाले एक मात्र संत थे। उल्लेखनीय है कि उनमें हिन्दू और इस्लाम की रूढ़ियों, संकीर्णताओं, कट्टरताओं के विरुद्ध खड़े होने जैसी दृढ़ता थी। उनमें सच को सच कहने की निर्भीकता भी थी। वे कहते हैं -

साँच ही कहत और साँच ही गहत है, काँच कू त्याग कर साँच लागा।

कहै कबीर यूँ भक्त निर्भय हुआ, जन्म और मरन का मर्म भागा।।

संत कबीर जिस सामंतवादी युग परम्परा में थे, वह सामाजिक दृष्टि से अपकर्ष का समय था। चारों ओर विलासिता जैसे मूल्य समाज में व्याप्त थे। नारी को भोग, विलासिता की वस्तु माना जाता था। वर्णव्यवस्था और साम्प्रदायिकता ने मानव सभ्यता को तहस-नहस कर दिया था। धर्म का आडंबरकारी रूप वास्तविक धार्मिकता को निगल चुका था तथा भाषा से लेकर जीवनशैली तक एक प्रकार का आभिजात्य उच्च वर्गों की मानसिकता में बैठा हुआ था।

कबीर ने मानव सभ्यता की एकता एवं अखण्डता का सवाल उठाया और स्पष्ट घोषणा की कि “साई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोगे।” वे समाज के प्रति अति संवेदनशीलता से भरे रहे क्योंकि ‘सुखिया’ संसार खाता और सोता रहा जबकि संसार की वास्तविकता समझकर ‘दुखिया’ कबीर जागते और रोते रहे। जो कबीर की निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है -

सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।

दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।।

यह संवेदनशीलता निष्क्रिय नहीं थी, बल्कि इतनी ज्यादा दृढ़ता और आत्मविश्वास से भरी थी कि बेहतर समाज के निर्माण के लिए कबीर अपना घर फूँकने को पूर्णतः तैयार थे, वे कहते हैं -

हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।

अब घर जारौं तासु का, जो चलै हमारे साथ।।

संत कबीर का समाज के प्रति यही दृष्टिकोण वर्णव्यवस्था, साम्प्रदायिकता, भाषाई आभिजात्य और धार्मिक आडम्बरों के कठोर खण्डन में स्पष्ट दिखाई देता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था को धार्मिक व्यवस्था से बहुत अलग करके नहीं देखा जा सकता है। जहाँ जाति-भेद, वर्ण-भेद धार्मिक व्यवस्था का ही परिणाम है, जहाँ पति-पत्नी का संबंध आध्यात्मिक बंधन है, जहाँ व्यक्ति, परिवार तथा समाज के पारस्परिक संबंधों का मूलाधार धर्म हैं, वहाँ सामाजिकता, धार्मिकता से भिन्न कैसे हो सकती है। ब्राह्मण समाज भेदभाव, छुआछूत को बढ़ावा इसलिए देता है कि वह इसे अपना धर्म समझता है।

जिस देश में गरीबी-अमीरी, सुख-दुख, जाति-पाति, ऊँच-नीच सब कुछ ईश्वर की इच्छा से निर्धारित है, उस देश में यदि किसी भी तरह का सामाजिक परिवर्तन लाना है, तो उसके लिए धार्मिक परिवर्तन की दिशा में ही प्रयत्न करना उचित होगा। आज के बौद्धिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण युग में ये बातें आधारहीन, तथ्यहीन भले ही हो, परन्तु मध्ययुगीन परिवेश में ये शत-प्रतिशत सत्य थीं। मध्यकालीन संत कबीर जैसा ओजस्वी तथा विद्रोही कवि जब इस तरह का भाव व्यक्त कर सकता है, तो भ्रम की गुंजाइश लेशमात्र भी नहीं रह पाती है, वे कहते हैं -

पूरब जनम हम बाभन होते ओछे करम तप हीना।

रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीना।।

कबीर का व्यक्तित्व उस काल में प्रमुख रूप से एक भक्त के रूप में था। समाज सुधार उनके लिए गौण था। समीचीन नहीं है कि कबीर जिस तरह के भक्त थे, वह स्वयं में ही एक नवीन सामाजिक पद्धति एवं मानवीय समता की स्वीकृति तथा पक्षधरता का प्रमाण है। यह भक्ति मार्ग ऐसा है, जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र का अलगाव नहीं है, सभी एक ही ईश्वर की संतान हैं और सभी मनुष्य हैं। यदि इनकी कोई उपाधि है, तो वह भी एक है, संत या भक्त। इस साधना में ब्राह्मणों का वर्चस्व नहीं है। ब्राह्मण के महत्त्व को अस्वीकार करना, सभी वर्गों के लिए एक नये आध्यात्मिक मार्ग की खोज करना, वेद, शास्त्रों में प्रतिपादित उन मान्यताओं को अस्वीकार करना, जो ब्राह्मणों के महत्त्व को स्वीकार करती हैं, जो युग-युग से निर्मित सामाजिक व्यवस्था पर गहरी चोट है। इसलिए सामाजिक व्यवस्था से जुड़े हुए अनेक मुद्दों के संदर्भ में धर्म की दुहाई दी जाती थी।

संत कबीर, ने ब्राह्मणों का जमकर विरोध करने के लिए धर्म की व्यवस्था में से तर्क ढूँढने का प्रयत्न किया। जाति-पाति, छुआ-छूत और ऊँच-नीच के भेद-भाव को समाप्त करने के लिए उन्होंने आध्यात्मिक तथा दार्शनिक मान्यताओं का आधार ग्रहण किया। भारतीय दर्शन का बहु-विख्यात सिद्धांत अद्वैतवाद तत्त्वतः ब्रह्म की सत्ता को सत्य और शेष को असत्य मानता है। कबीर ने दर्शन के इस सूत्र का सामाजिक समता के लिए उपयोग किया। उन्होंने कहा जब एक ही तत्त्व सर्वत्र समाज में व्याप्त है, तो भेद-भाव कहाँ से पैदा हो जाता है, वे कहते हैं -

एकहि जोत सकल घट व्यापक, दूजा तत्त्व न होई।

कहै कबीर सुनौ रे संतो, भटकि मरै जनि कोई।।

संत कबीर ने परिस्थितियों के अभिशाप से धर्म को बचाने के लिए विश्व धर्म की रूपरेखा प्रस्तुत की है। उन्होंने कहा कि सबका ईश्वर एक ही है। हिन्दू और मुसलमान भले ही विविध नामों से अपने ईश्वर को पुकारे लेकिन उनके ईश्वर में किसी भी प्रकार की भिन्नता नहीं है। सत्य एक है, भले ही संप्रदाय अनेक हो। इस बात पर संत कबीर ने कहा -

हम तो एक-एक कर जाना।

दोय कहैं तिनको है दो जग, जिन नहि पहिचाना।।

एकै पवन एक ही पानी एक ज्योति संसारा।

Expression of Learning

एक ही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजन हारा।।

कबीर ने धर्म को सशक्त और सुसंगठित किया। समाज में जाति भेद की संकीर्णता जिस हद तक पहुँची थी, उन्होंने समाज में यह भी अनुभव किया था। कबीर ने देखा कि जाति व्यवस्था को अगर शिथिल नहीं किया गया, तो धर्म की रक्षा संभव नहीं हो सकेगी। इसलिए जाति बंधन की परम्परा को तोड़ने के लिए उन्होंने अभूतपूर्व प्रयत्न किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा है -

जाति-पाति पूछे नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का कोई।

कबीर ने हिन्दू-मुसलमानों दोनों ही धर्मों के पाखण्डों का विरोध कर खण्डन किया तथा उन्हें सच्चे मानव-धर्म को अपनाने के लिए प्रेरित किया। संत कबीर मूर्तिपूजा के घोर विरोधी थे, उनका मानना था कि जिस परमात्मा का कोई आकार नहीं, देशकाल का जिसके लिए कोई आधार नहीं, उसकी मूर्ति कैसी ? अतः मूर्ति की पूजा करने वाले हिन्दुओं को फटकारते हुए वे कहते हैं -

पाहन पूजे हरि मिलै तो मैं पूजूं पहर।

ताते यह चक्की भली पीस खाय संसार।।

संत कबीर की तर्कवादी सोच उनके आडम्बर विरोधी नजरिये में स्पष्ट दिखाई देती है। वे मध्यकालीन संत परम्परा से थे, इसलिए ईश्वर में उनकी गहरी आस्था थी, उन्होंने समाज में देखा कि हिन्दुओं में मुण्डन कराने की प्रथा प्रचंड रूप में विद्यमान है। विशेष रूप से मंदिरों और मठों में ईश्वर के साधक इस लालच में गंजे हो जाते थे कि इस परम्परा पर चलकर स्वर्ग तथा ईश्वर को प्राप्त करना कुछ आसान हो जाएगा। संत कबीर ने इस अतार्किक परम्परा पर जबरदस्त व्यंग्य करते हुए कहा है -

मूंड मुड़ाए हरि मिले, सब कोइ लेय मुड़ाय।

बार बार के मूंडते, भेड़ न बैकुण्ठ जाय।।

संत कबीर ने मुसलमानों को भी आडम्बरों के लिए फटकार लगाई है, जब उन्होंने मस्जिद के उपर चढ़कर मौलवी को अजान लगाते देखा तो व्यंग्य करते हुए पूछा कि क्या तुम्हारा खुदा बहरा हो गया है, जो नीचे से तुम्हारी आवाज नहीं सुनता है। संत कबीर ने मौलवी पर व्यंग्य कसते हुए कहा है -

काँकर पाथर जोरि कै, मस्जिद लेई बनाय।

ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।।

आधुनिकता के इस युग में भी समाज में धार्मिक आडम्बर और अंधविश्वास हर जगह व्याप्त है। इन आडम्बरों के रहते हम वैज्ञानिक स्वभाव से युक्त समाज का निर्माण नहीं कर सकते। संत कबीर आडम्बरों और अंधविश्वासों पर तार्किक सवाल खड़े करना सिखाते हैं। ऐसा वैज्ञानिक स्वभाव अगर सभी का हो जाए तो निश्चित तौर पर रूढ़ियाँ और अतार्किक प्रथाएँ स्वतः समाप्त हो सकती हैं। कबीर समाज में कुछ अन्य मामलों में भी नैतिक सलाह देते हैं। उनकी अधिकांश नैतिक सलाह आज भी हमारे लिए उपयोगी हैं। उदाहरण के लिए, एक दोहे में उन्होंने संदेश दिया है, जो आज के उपभोक्तावादी समाज के लिए बेहद उपयोगी है -

साई उतना दीजिए, जामे कुटुम समाय।

मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाए।।

कबीर ने अपने काव्य में अहिंसा की बात गहराई के साथ कही है। उन्होंने महावीर और बुद्ध की परम्परा के अलावा वैष्णव परम्परा से भी अहिंसा का सिद्धांत सीखा और अपने निजी जीवन में इसका उपयोग किया। उनका कहना है कि “साई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोग।” एक कथन में कबीर ने माँसाहार करने वालों को चेतावनी दी है कि उनके द्वारा की गई पशु-बलि का हिसाब ईश्वर अवश्य लेगा। वे मजेदार सा तर्क देते हुए कहते हैं कि बकरी तो सिर्फ पत्ते

खाती है और इतने से ही उसकी खाल उतार ली जाती है। संत कबीर कहते हैं कि जरा सोचकर देखिए, जो इंसान बकरी खाते हैं, उनका भविष्य में क्या हाल होने वाला है -

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।

जे नर बकरी खात हैं, तिनका कौन हवाल।।

कबीर की सर्व समाज को सलाह थी कि व्यक्ति को दूसरों से बातचीत के लिए अपनी भाषा को विनम्र रखकर इस्तेमाल करना चाहिए। वे इस बात को समझते थे कि अधिकांश झगड़ें, विवाद, किस्से आदि भाषा, वाणी के दुरुपयोग के कारण ही होते हैं, न कि वैचारिक या मानसिक वैपरीत्य के कारण। इसलिए संत कबीर ने अपने काव्य के माध्यम से स्पष्ट सलाह दी है कि -

ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।

और को सीतल करे, आपहु सीतल होय।।

कबीर अपने काव्य में आत्म-आलोचना की भी बात करते हैं। आमतौर पर देखा जाता है कि लोग दूसरों की कमियाँ, गलतियाँ निकालने में उत्साहित नजर आते हैं और स्वयं की कमियाँ, गलतियों पर पर्दा डालते हैं। कहा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने मामले में सबसे अच्छा वकील होता है और दूसरों के मामले में सबसे बुरा जज। संत कबीर समाज को निम्न मानसिकता से मुक्त कराना चाहते थे, वे समाज को सिखाते हैं कि दूसरों पर कठोर कसौटियों का प्रयोग करने की बजाय स्वयं पर करना सीख लो और अपनी कमियों को ईमानदारी से स्वीकार करने का हौसला रखना चाहिए। एक कथन में वे कहते हैं कि -

बुरा जो देखन में चला, बुरा न मिलया कोय।

जो दिल खोजो आपना, मुझसे बुरा न कोय।।

इस प्रकार कबीर की सामाजिक चेतना या समाज सुधारक व्यक्तित्व पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि क्या मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी हुई समस्याओं को धार्मिक तथा राजनीतिक समस्या से अलग रखकर देखा जा सकता है। एक क्षण के लिए कबीर कालीन समाज को दरकिनार कर अपने आधुनिक समाज को देख लिया जाए तो बात कुछ अधिक स्पष्ट हो जायेगी। वर्तमान समाज की अनेक समस्याओं में से धार्मिक कट्टरता सबसे बड़ी और प्रमुख समस्या है। इसी धार्मिक कट्टरता के कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की हत्या तक कर लेता है, जिसके कारण समाज में व्यक्तियों का सह-अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है, जो हमारे सामाजिक संगठन की मूलभूत आवश्यकता है।

जहाँ तक संत कबीर के समाज सुधारक होने का प्रश्न है, यह निर्विवाद सत्य है कि वे बुद्ध, गाँधी, अम्बेडकर, ज्योतिबा फुले, पेरियार आदि क्रांतिकारी समाज सुधारकों की परम्परा में शामिल होते हैं। एक महान समाज सुधारक की मूल पहचान यह है कि वह अपने युग की विसंगतियों की गहनता से पहचान कर, एक मौलिक व समयानुकूल जीवन दृष्टि प्रस्तावित करें तथा जीवन दृष्टि को स्थापित करने के लिए हर प्रकार के भय और लालच से मुक्त होकर दृढ़तापूर्वक संघर्ष करें।

कबीर मध्यकालीन संत परम्परा से थे, इसलिए ईश्वर में उनकी गहरी आस्था थी। उनकी तर्कवादी सोच उनके आडम्बर विरोधी नजरिये में स्पष्ट दिखाई देती है, परंतु अपनी सहज तार्किकता से वे समझते थे कि ईश्वर, जो अपने आप में पूर्ण है, किसी भी प्राणी से यह अपेक्षा नहीं रखता होगा कि वह उसके नाम पर बलि चढ़ाएँ, तीर्थाटन या

कर्मकांड करें। अपनी इसी तार्किकता के चलते उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों में प्रचलित आडम्बरों पर करारा प्रहार अपने काव्य में किया है।

संत कबीर अपने आप में पूर्ण नहीं थे, परन्तु उनके विचारों में कुछ ऐसे पक्ष मौजूद थे, जिन्हें पढ़कर चिंता होती है। उनके समय में तो उन कमियों पर ज्यादा चर्चा नहीं हुई पर आधुनिक काल में, जब प्रत्येक विचारक अनेक विचारधाराओं की कसौटियों से परखा जाने लगा है, तब संत कबीर की कमजोरी भी खुलकर सामने आने लगी है। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति के विचार इतने पूर्ण नहीं होते कि उन पर सवाल न उठाए जा सकें।

संत काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि संत कबीर के काव्य में निहित सामाजिक चेतना पर सबसे गंभीर प्रश्नचिन्ह नारीवादी विचारकों द्वारा लगाया गया है। कबीर के कई ऐसे पद हैं, जिनमें वे नारी की अनावश्यक निंदा करते हुए भी नजर आते हैं। दरअसल, वे मध्यकालीन जिस परम्परा में दीक्षित थे, उसमें महिलाओं को 'माया' समझा जाता था और उन पर आरोप था कि वे अक्सर पुरुषों का ध्यान भटकाने में लगी रहती थी। यह समझ नहीं आता कि कबीर जैसा महान ज्ञानी और तार्किक व्यक्ति भी ऐसी बेहूदी विचारों से कैसे प्रभावित हो गया ? आज यह सोचकर आश्चर्य होता है कि संत कबीर ने समाज में महिलाओं को कितना भला-बुरा कहा होगा। यह बात उनके एक दोहे में स्पष्ट नजर आती है, वे कहते हैं कि -

नारी की झाँझ पड़त, अंधा होत भुजंग।

कबिरा तिनकी कौन गति, जे नित नारी के संग॥

संत कबीर ने अपने काव्य के माध्यम से सर्व समाज को विनम्र भाषा-शैली का प्रयोग करने की सलाह दी है, परन्तु स्वयं इतनी आक्रामक भाषा का प्रयोग करते नजर आते हैं कि सुनने वाला तिलमिलाकर आवेशित हो उठता है। यह अंतर्विरोध उनके काव्य में हर जगह तो देखने को नहीं मिलता है, परन्तु कबीर के कुछ कथनों में अवश्य झलकता है। जैसे कि एक जगह जहाँ वे किसी मुल्ले या पण्डित पर आडम्बरों या जातिवादी व्यवहार के कारण प्रहार करते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि कबीर अपने इस गुस्से और आक्रामकता के कारण ही 'कबीर' बन सकें।

संत कबीर ने मध्यकाल में इस नश्वर जगत को झूठा घोषित किया है। वे आदि शंकराचार्य से भी प्रभावित थे, जिन्होंने सम्पूर्ण जगत को मिथ्या कहा था। संत कबीर भी ने भी अपनी साहित्यिक रचनाओं में कई स्थानों पर इस जगत को मिथ्या, झूठा सिद्ध किया है। वे कहते हैं -

यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद पड़े धुलि जाना है।

मध्यकाल में संत कबीर के समय यह दृष्टिकोण चल जाता था, परन्तु आज चल पाना बहुत ही मुश्किल ही नहीं असंभव है। वर्तमान विश्व के अधिकांश लोग सैद्धांतिक तौर पर चाहे मानें या नहीं, परन्तु व्यावहारिक तौर पर समझ चुके हैं कि यह दुनिया ही वास्तविक और अंतिम दुनिया है, इसलिए इसे झूठा मानना और कहना किसी काल्पनिक दुनिया के सपने देखना निरर्थक है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संत कबीर एक महान समाज सुधारक थे। जहाँ तक उनके नारी संबंधी या परलोक संबंधी विचार हैं, सर्व समाज को उनसे प्रभावित नहीं होना चाहिए, क्योंकि वे सत्य धर्म के प्रतिपादक, समन्वयवादी एवं क्रांतिकारी विचारधारा वाले व्यक्ति थे। उन्होंने समाज में प्रचलित सभी प्रकार की असमानता बाह्याडम्बर एवं सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। निर्गुणोपासक संत कबीर ने जनसाधारण को सरल-

जीवन, सत्याचरण, पारस्परिक एकता, समता आदि की ओर उन्मुख करने का जो साहसिक और सराहनीय कार्य किया है, उसी के परिणामस्वरूप संत कबीर मध्यकाल के एक उच्च कोटि के संत तथा महान समाज-सुधारक कहे जाते हैं।

निष्कर्ष

भक्तिकाल की निर्गुण काव्यधारा के संत कबीर ने नाथ पंथियों की हठयोग साधना में 'भक्ति भावना' का समावेश कर उसकी नीरसता को सरसता में परिवर्तित किया है। कहा जाता है कि भक्ति भावना के लिए द्वैत आवश्यक है, जो सगुणोपासना में ही सम्भव है क्योंकि निर्गुणोपासक तो आत्मा और परमात्मा के अद्वैत पर अधिक बल देते हैं। इसलिए संत कबीर की भक्ति-भावना सूर और तुलसी जैसी नहीं है। कबीर ने यह माना है कि भवसागर से पार जाने का एक मात्र साधन भक्ति है। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। इस भक्ति के अभाव में ही मनुष्य 'भव-जल' में डूबता जाता है।

संत कबीर के काव्य में निहित सामाजिक चेतना के संदर्भ में धारणा यह बनती है कि वे समाज सुधारक थे। परन्तु संत कबीर बाह्य आडम्बर, मिथ्याचार एवं कर्मकांड के घोर विरोधी थे। वे सामाजिक मान्यताओं का विरोध करते समय सर्व-निषेधात्मक मुद्रा कभी नहीं अपनाते थे। कबीर अपने समय में प्रचलित हठयोग की साधना, वैष्णव मत, इस्लाम तथा अनेक प्रकार की साधना पद्धतियों से परिचित थे, उन्होंने सभी की आलोचना की, परन्तु अपने काव्य में उनका सार तत्त्व समाहित किया। एक निर्गुण भक्त के रूप में उन्होंने शुष्क ज्ञान साधना से आगे बढ़कर संसार के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित किया, उन्हें मानव समाज की विषमाताओं से पीड़ित होने और समाज को उबारने की छटपटाहट भी प्रदान की। स्पष्टतः संत कबीर काव्य में निहित सामाजिक चेतना उनकी भक्ति भावना का एक प्रबल पक्ष है।

संदर्भ सूची

1. दास, अभिलाष (2020), कबीर दर्शन, इलाहाबाद : कबीर पारख संस्थान।
2. कबीर (2024), कबीर बीजक (मूल), न्यूयॉर्क : औरिजनल ब्लैक क्लासिक।
3. दास, डॉ. श्यामसुंदर (2024), कबीर ग्रंथावली, नई दिल्ली : शिवांक प्रकाशन।
4. सूरती, उर्वशी (2018), कबीर जीवन और दर्शन, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन।
5. गौतम, एस. एस. (2018), संत (कबीर विचार दर्शन), नई दिल्ली : गौतम बुक सेंटर।
6. मिश्र, शिव कुमार (2020), भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, इलाहाबाद : अभिव्यक्ति प्रकाशन।
7. पाण्डेय, रामखेलावन (2005), मध्यकालीन संत साहित्य, वाराणसी : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय।
8. शास्त्री, प्रमोद चन्द्र (संपादक) (2020), कबीर बीजक, वाराणसी : श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार।
9. युगलानंद, स्वामी (2022), कबीर सागर (सम्पूर्ण 11 भाग), मुंबई : खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन।
10. भाटी, प्रेम सागर (2021), कबीर साहित्य में सामाजिक चेतना का स्वरूप, नई दिल्ली : भाषा प्रकाशन।
11. द्विवेदी, हजारी प्रसाद (2025), कबीर व्यक्तित्व साहित्य और दार्शनिक विचारों की आलोचना, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
12. सिंह, मनोज कुमार (2018), मध्यकालीन संत साहित्य में समाज और व्यक्ति, नई दिल्ली : आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस।